वैदिक व्याख्यान माला - नववाँ व्याख्यान

वैदिक राष्ट्र-गीत

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्य वाचस्पति, गीतालङ्कार

मूल्य छः आने

ॐ

वैदिक राष्ट्र-गीत

सब मानते हैं कि 'वेद' में सब विद्याएं हैं। सब विद्याएं सूक्ष्मरूपसे वेदमें हैं, यह स्मृतियोंमें भी कहा है 'सर्वज्ञानमयो वेदः' यह प्रसिद्ध वेदप्रशंसा है। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं' ऐसा मनुस्मृतिमें कहा है। ऐहिक और पारलौकिक सब विद्याएं वेदमें है, ऐसा माननेसे अथवा कहनेसे कार्य नहीं चल सकता, प्रत्युत जो विद्याएं वेदमें हैं, उनको बाहर निकाल कर जनताके सामने रखना चाहिये, इसी तरह जो गूढ रूपमें विद्या वेदमें होगी, उसको बाहर निकालकर जनताके सामने प्रकट रूपमें सिद्ध करके बताना चाहिये। वैदिक धर्मियोंपर यह भार इस समय है। इसलिये इस लेखमें वेदमें 'राष्ट्रगीत' है और वह बडा सारगर्भित है, तथा आजकलके समस्त देशोंके राष्ट्रगीतोंसे वह अधिक बोधप्रद है, यह हम इस लेखमें बताना चाहते हैं।

वेदमें 'राष्ट्रगीत' है, इतना सिद्ध होनेसे वेदमें राष्ट्रविषयक विचार हैं, यह स्वयंही सिद्ध हो सकेगा, और राष्ट्रशासन, राष्ट्ररक्षण और राष्ट्रके अभ्युदय के संबंधके सब विचार वेदमें हैं, ऐसा भी परंपरया मानना सुगम होगा। इसलिये 'वैदिक राष्ट्रगीत' का मनन हम इस लेखमें करते हैं।

अथर्ववेदके १२ वे काण्डके प्रथम सूक्तमें यह "वैदिक राष्ट्रगीत" है और "ग्रामपत्तनादिरक्षणार्थम्"। 'गांव, नगर आदिके संरक्षणके समय इसका पाठ करना चाहिये' ऐसा इस सूक्तका विनियोग वहां कहा है। राष्ट्रगीतका यही उपयोग सर्वत्र होता है। यह सूक्त 'अथर्वाङ्गिरस' का है। इस सूक्तका देवता 'मातृभूमि' है और 'राष्ट्ररक्षणके कर्म' में इसका विनियोग है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्त निःसंदेह राष्ट्रगीत है और आज कलके राष्ट्रगीत जिस कार्यमें बोले या गाये जाते हैं, उसी कार्यमें यह गीत भी गाया जाता था। इस राष्ट्रगीतमें 'मातृभूमि' का स्पष्ट निर्देश भी है देखिये—

मातृभूमिकी कल्पना

१ माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥ १२।१।१२

२ सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १२।१।१०

३ भूमे मातर्निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ॥ १२।१।६३

इन मन्त्रोंमें मातृभूमिकी अत्यंत स्पष्ट कल्पना है।

"(१) मेरी माता भूमि है और मैं इस मातृभूमिका पुत्र हूँ। (२) यह मातृभूमि मैं जो पुत्र हूँ उस पुत्रके लिये पर्याप्त दूध अर्थात् खानेकेलिये अन्न देवे। (३) हे मातृभूमे! मुझे सुरक्षित रख।" ये मन्त्र स्पष्ट हैं और इनमें मातृभूमि और उसके पुत्र इनकी स्पष्ट कल्पना है। मैं मातृभूमिका पुत्र हूं। 'पुत्र' का अर्थही (पुनाति त्रायते च) पवित्र करनेवाला और संरक्षण करनेवाला ऐसा है। मातृभूमिके पुत्रका कर्तव्य यहां बताया है। जो पुत्र है वह पवित्र बने, पवित्रता करे और अपनी माताका संरक्षण करे। इस तरह इन मन्त्रोंमें मातृभूमिका संरक्षण करनेका कर्तव्य ही मातृभूमिके सुपुत्रोंका है ऐसा स्पष्ट कहा है। यह सत्य भी है। माताका उत्तम संरक्षण करना यह सुपुत्रका कर्तव्यही है, यह क्या कहना आवश्यक है? यह तो हरएक पुत्रका कर्तव्य है ही। कुपुत्र ही माताका संरक्षण नहीं करता, जो सुपूत है वह तो अपना जीवन अर्पण करके अपनी माताको सुरक्षित रखता है, और उसका संमान बढाता है, यही बात ऊपरके मन्त्रोंमें कही है। भूमि माता

है और जनता उस माताके पुत्र हैं, इस बातका स्पष्ट निर्देश करनेवाला मन्त्र यह है—

हम तेरे पुत्र हैं

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्याः
त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा
येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥

अ. १२।१।१५

"हे मातृभूमि [तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न हुए हम सब मनुष्य] तुम्हारे उपर संचार करते हैं। तुम ही द्विपादों और चतुष्पादोंका संरक्षण तथा धारण पोषण करती है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद ये पञ्चजन निःसंदेह तुम्हारे ही पुत्र हैं। इनके लिये सूर्य उदय होकर प्रकाश देता है।"

इस मन्त्रमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि, ये पांचों प्रकारके मानव मातृभूमिसे उत्पन्न हुए हैं और मातृभूमिसे इनका पालन पोषण होता है और ये पांचों मातृभूमिपर यथेच्छ संचार करते हैं।

(त्वज्जाताः) मातृभूमिसे पञ्चजनोंकी उत्पत्ति हुई है, अर्थात् जो जिस मातृभूमिके रहनेवाले हैं, वे ही उस भूमि पर संचार करें, वहीं रहें, वहां जो भोग होते हैं उनको प्राप्त करें और उनका भोग करें। ऐसा कभी न हो कि दूसरे लोग आकर उनका भोग करें और मातृभूमिके पुत्र उनसे वंचित रहें। इस की सूचना देनेके लिये यह मन्त्र इस राष्ट्रगीतमें है। यह मातृभूमि (द्विपदः चतुष्पदः बिभर्षि) द्विपाद मानव तथा पक्षी तथा चतुष्पाद अर्थात् गौ आदि पशुओंका भरण पोषण यह कर रही है। ऐसा ही होना चाहिये। माताका दूध उसके पुत्रोंको मिलना चाहिये। सब लोग इसका विचार मनमें रखें। दूसरे देशको परास्त करके पाशवी बलसे उस देशको लूटना किसी भी देशको योग्य नहीं है।

यदि किसी देशमें ज्ञान और विज्ञान बढा है, कला कुशलता बढी है, तो उनकी शिक्षा वे अन्य देशवासियोंको दें। उनको सुबुद्ध और प्रबुद्ध करें, इस तरह उनकी सेवा करनेके लिये अपने ज्ञान, बल तथा धनका उपयोग करें। विश्व सेवा ही विराट पुरुषका संतोष बढा सकती है। कितना महत्त्व पूर्ण उपदेश इस मंत्रने दिया है !! मनुष्य अन्य देशमें जांय, पर उनको पददलित करनेके लिये नहीं, पर उनकी सहायता करके उनको उठानेके लिये जांय। इस तरह विश्वसेवासे विश्वका सुख बढावें और सबके दुःख दूर करें। विश्वको पददलित करनेसे द्वेष बढेगा, जो निःसंदेह युद्धोंको बढावेगा।

अनेक भाषी अनेक धर्मियोंका बन्धुभाव.

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ अ. १२।१।४५

"(बहुधा विवाचसं जनं बिभ्रती) अनेक प्रकारकी विविध भाषाएं बोलनेवाले और (नाना-धर्माणं) अनेक धर्मोंको धारण करनेवाले जनसमुदायोंको (यथा ओकसं) एक घरमें रहनेवाले भाईयोंके समान यह मातृभूमि धारण करती है। यह भूमि हमें धनकी हजारों धाराएं देती रहे, जैसी दुहनेके समय न हिलनेवाली गौ दूध देती है।"

यहां 'विवाचसं, नानाधर्माणं जनं' ये पद बडे महत्त्वके हैं। 'वि-वाचसं' का अर्थ अनेक प्रकारकी भाषाओंको बोलनेवाले लोग मातृभूमिमें रहते हैं। प्रत्येक प्रान्तमें भाषा भिन्न होती है। भारतमें ही देखिये काश्मीरी पंजाबी, सिन्धी, बलुची, पुशतो, हिन्दी, बिहारी, बंगाली, राजपुतानी, गुजराती, कच्छी, मराठी, कन्नडी, तेलगु, तामील, मलयालं आदि कई भाषाओंको बोलनेवाले लोग यहां हैं, प्रत्येक देशमें इसी तरह प्रान्त भाषा विभिन्न होती है। रूसमें भी इसी प्रकार अनेक भाषाएं हैं। प्रान्तिक बोलियाँ भी इसी तरह विभिन्न होती हैं।

मनुष्योंके धर्म भी विभिन्न होते हैं। यहांका धर्म शब्द हिंदुधर्म बुद्धधर्म जैसे धर्मोंका बोधक नहीं है। वेदके समय ये मानव निर्मित धर्म नहीं थे। अतः यहांका धर्म शब्द मानवकी मनः प्रवृत्तिका वाचक है। मानवमें ज्ञानप्रवृत्ति, वीरवृत्ती, संग्रहवृत्ती और कर्मवृत्ती स्वभावतः होती है। ये मानवके विविध स्वभाव धर्म हैं। ऐसे विविध स्वभाव धर्मके कारण मानवोंमें अनेक प्रवृत्तियां होती हैं, तो भी [यथा ओकसं] एक घरमें रहनेवाले भाईयोंके समान सब

विभिन्न प्रवृत्तीके लोग इस मातृभूमिमें रहते हैं और एक मतसे अपनी मातृभूमिकी सेवा करते हैं और अपना आनन्द बढाते हैं।

प्रवृत्तियां विभिन्न होनेपर भी एक देशवासीयोंमें एकता रहनी चाहिये। यह उपदेश इस मन्त्रमें है और वह बडाही लाभदायी है। जैसी मां अपने बच्चेको अपना दूध देती है और उसका पोषण करती है, उसी तरह मातृभूमि अपने धान्यरूपी दूधसे अपने बच्चोंका पालनपोषण करती है। यह अमूल्य उपदेश इस मंत्रसे मिलता है।

देवोंद्वारा बसाए हुए नगर

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भाम्
आशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ अ. १२।१।४३

" जिस हमारी मातृभूमिके नगर देवोंद्वारा बनाए हैं, तथा जिस हमारी मातृभूमिके क्षेत्रोंमें मनुष्य विविध प्रकारके कार्य करते हैं, उस अनेक उत्तम पदार्थोंको अपने गर्भमें-अपनी खानोंमें धारण करनेवाली हमारी मातृभूमिको प्रजापालक परमेश्वर प्रत्येक दिशामें हमारे लिये अत्यंत रमणीय बनावे। "

हमारी मातृभूमि हमारे लिये प्रत्येक दिशामें रमणीय होनी चाहिये। नगर हो या ग्राम हो, जहां मनुष्य जाय, वहां रमणीयता दीखनी चाहिये। अपनी मातृभूमिपर किसी स्थानपर उदासीनता नहीं रहनी चाहिये। मनुष्योंका यह कर्तव्य है कि वे अपने नगरों और ग्रामोंको तथा वनोंको रमणीय बनानेका यत्न करें। सर्वत्र शोभा दीखनी चाहिये। आकर्षकता बढानी चाहिये। सौंदर्य सर्वत्र ओतप्रोत रहना चाहिये। वेदधर्म चाहता है कि मनुष्य अपने ग्रामों, पत्तनों, नगरों और पुरियोंको अत्यंत सुन्दर बनावें।

देव निर्मित नगरियां हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारका है, रामचन्द्रकी अयोध्या है, हरका हरद्वार है, बद्रिनाथ बद्रि-केदार इन देवोंके लिये सुप्रसिद्ध है। कालीका कलकत्ता है, रामचन्द्रका बढाया रामेश्वर है, भवानीका कन्याकुमारी है, श्रीरंग श्रीरंगनाथका है, श्री कृष्णकी मथुरा है, वृंदावन भी उसीसे पवित्र बना है, इस तरह देवताओंके कारण प्रसिद्ध हुए नगर अपने देशमें तथा अन्यान्य देशोंमें भी प्रसिद्ध हैं। इसका ज्ञान तद्देशियोंको होना चाहिये। हम जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका प्राचीन इतिहास उन नगर-वासीयोंको विदित होना चाहिये। इससे अपने नगरका तथा अपने राष्ट्रका प्रेम उन निवासियोंके मनोंमें स्थिर रहता है। ऐसा प्रेम अपने देशके नगरोंके विषयमें तथा अपने राष्ट्रके विषयमें देशवासियोंमें हो और वह बडे, ऐसी सुशिक्षा युवकोंको मिलनी चाहिये, यह बोध इस मंत्रसे प्राप्त होता है। यही विचार और देखिये—

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥

अ. १२।१।३९

" जिस मातृभूमिमें देशका भूतकाल बनानेवाले प्राचीन ज्ञानी ऋषियोंने सत्र, यज्ञ तथा तप करके (सप्त गाः) सात भूविभागोंका उद्धार किया, वही हमारी श्रेष्ठ मातृभूमि है। "

इस मंत्रमें कहा है कि इस भूमिमें (भूत-कृतः ऋषयः) भूतकालमें उज्ज्वल ज्ञानका प्रचार करनेवाले ऋषि हुए थे। उदाहरणके रूपमें देखिये वसिष्ठ, भरद्वाज, वामदेव, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम आदि ऋषियोंने इस देशमें सर्व प्रथम ज्ञानका प्रचार किया था। इसी तरह अन्यान्य देशोंमें अन्य ऋषियोंने किया। ये भूतकाल बनानेवाले ऋषी यहां हुए ऐसा प्रत्येक देशके निवासियोंको विदित रहना चाहिये। प्राचीन समयमें इन ऋषियोंने इस ज्ञानका प्रसार किया, इन क्षत्रिय वीरोंने इस देशका इस युद्धमें इस शत्रुसे संरक्षण किया, इन वैश्योंने धनधान्यकी वृद्धी की और जनताको सुखी बनाया, इन कुशल शिल्पियोंने ये शिल्प बनाये और देशका सौंदर्य बढाया। यह ज्ञान देशवासियोंको होना चाहिये, जिससे अपने भूतकालके विषयमें आदर बढता है, देश प्रेम वृद्धिंगत होता है और भविष्यमें वैसे शुभ कर्म करनेका उत्साह जनतामें बढता है। भूतकालके इतिहासका ज्ञान इस तरह जनताका उत्साह बढाता है। इस ज्ञानको प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। यही बात और अधिक स्पष्ट अगले मन्त्रमें बताई है वह देखिये—

देव ऋण

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे
यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा
भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ अ. १२।१।५

" जिस मातृभूमिमें हमारे प्राचीन पूर्वजोंने पराक्रम किया था और जिसमें देवोंने असुरोंको भगा दिया था, जो मातृभूमि गौवों, घोडों और पक्षियोंको रहनेके लिये अच्छा स्थान देती है, वह हमारी मातृभूमि हमें ऐश्वर्य और तेज देवे । "

इस मन्त्रमें भी प्राचीन इतिहासकी ओर निर्देश किया है। (पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे) प्राचीन पूर्वजोंने जिसमें विविध पराक्रम किये थे, पराक्रम करके मातृभूमिका संरक्षण किया था, इसी तरह (देवा असुरान् अभ्यवर्तयन्) जिस मातृभूमिके रक्षणार्थ देवोंने असुरोंको भगा दिया था, अपने ही मातृभूमिमें देखिये, इन्द्रने वृत्र, शंबर आदि असुरोंका नाश किया, रामने रावणादिकोंका नाश किया, विष्णुने नरकासुर आदिका नाश किया, श्री शंकरने त्रिपुरासुरका नाश किया, इस तरह अनेक देवोंने अनेक असुरोंका नाश किया था और इस राष्ट्रको सुरक्षित रखा था, यह प्राचीन इतिहास देखना आवश्यक है। इसको देखनेसे तरुणोंमें मातृभूमिके रक्षण करनेका उत्साह बढता है। यह उत्साह जनतामें बढे इसीलिये इन मंत्रोंमें ये निर्देश आगये हैं। इस कारण इनका विशेष महत्व है। यही वर्णन अगले मंत्रमें विशेष स्पष्टतासे देखिये—

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रिरे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः॥
अ. १२।१।१०

' अश्विदेवोंने जिस भूमिका मापन किया, विष्णुने जिस भूमिमें अनेक पराक्रम किये, शक्तिशाली इन्द्रने जिस भूमिको अपने लिये शत्रुरहित किया, वह हमारी मातृभूमि, माता जैसी अपने पुत्रको दूध देती है, उस तरह हमें उपयोगी पदार्थ देवे । "

इस मंत्रमें विष्णु और इंद्रके पराक्रमोंका स्पष्ट निर्देश है। इस उपलक्षणसे अन्यान्य वीरोंके पराक्रम भी जानने योग्य हैं।

अश्विदेवोंने भूमि, पर्वत, नदी, तालाव आदिके क्षेत्रोंका मापन किया और यह क्षेत्र इतना है, यह इतना है ऐसा निश्चित किया। भूमिका मापन सबसे प्रथम अश्विदेवोंने किया और मानवोंकी गणना सबसे प्रथम गणपतिने की। मनुष्य गणना भी मानवी उन्नतिका एक उत्तम साधन है। इसी तरह अश्विदेवोंने जो जो भूमापन किया, वह भी उन्नतिके लिये सहायक था, इसलिये किया।

जिस तरह इंद्र और विष्णुने असुरोंका नाश किया और मातृभूमिकी सुरक्षा की, उसी तरह अश्विदेवोंके भूमापन किया और प्रमाणबद्धता ग्रामों और नगरोंकी की। सभ्यताकी सुरक्षाके लिये इसकी अत्यंत आवश्यकता है। यह बात इस मन्त्रने सूचित की है।

मातृभूमिका संरक्षण

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं
देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहां
अथो उक्षतु वर्चसा॥ अ० १२।१।७

" ज्ञानी और वीर जिस मातृभूमिकी आलस्य न करते हुए सर्वदा रक्षा करते रहते हैं, वह मातृभूमि हमें मधुर और प्रिय अन्न देवे और तेजसे हमें युक्त करे। "

इस मंत्रमें कहा है कि मातृभूमिकी सुरक्षा (विश्वदानीं) सदा सर्वदा करनी चाहिये और (अप्रमादं) प्रमाद न करते हुए करनी चाहिये। मातृभूमिके सुपुत्रोंमें जो ज्ञानी हों वे ज्ञानसे, जो वीर हों वे अपने वीर्यसे, जो धनी हों वे अपने धनसे और जो कर्मचारी हों वे अपने प्रयत्नसे मातृभूमिको सुरक्षित रखनेका यत्न करें। अपनी पराकाष्टा करके मातृभूमिको सुरक्षित रखें। किसी तरह शत्रुका आक्रमण अपनी मातृभूमिपर होने न दें।

मातृभूमिमें जो मधुर और सामर्थ्य बढानेवाला अन्न और खाद्य पेय होगा, वह सब उस मातृभूमिके पुत्रोंको ही मिले। कोई दूसरे शत्रु अपने पाशवी बलसे आक्रमण करके उस अन्नको लूट न सकें। ऐसी व्यवस्था स्थायी रूपसे राष्ट्रमें होनी चाहिये। किसी समय किसी कारण इस संरक्षणके विषयकी शिथिलता राष्ट्रमें नहीं होनी चाहिये।

कितना उत्तम और सदा दक्ष रहनेका उपदेश इस मन्त्रने दिया है। मातृभूमिके भक्तोंको यह सदा ध्यानमें धारण करना चाहिये।

मातृभूमिकी सेवा

या ऽर्णवेऽधि सलिलमग्र आसीत्
यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥
अ. १२।१।८

" जो मातृभूमि प्रारंभमें जलके अन्दर थी, जिस मातृभूमिकी सेवा मननशील लोग कुशलतासे (तथा राजनीतीसे भी) करते हैं, वह हमारी मातृभूमी हमारे उत्तम राष्ट्रमें तेजस्विता और बल धारण करे । "

यहां (मायाभिः अन्वचरन् मनीषिणः) मायाओंसे ज्ञानी सेवा करते हैं ऐसा कहा है । ' माया ' पदके दो अर्थ वेदमें हैं । (१) कुशलता, कार्यकी प्रवीणता, चातुर्य, निपुणता तथा (२) कपट, कुटिलता, कपटपटुता, दावपेंच, शत्रुको चमका देनेकी विद्या । ये दोनों अर्थ माया शब्दमें हैं । शत्रुको परास्त करना है । यदि शत्रु कार्यप्रवीणतासे परास्त होता है, तब तो ठीक है, यदि शत्रु बडा प्रबल है और सरलतासे परास्त नहीं होता, तो उसको कुटिलतासे भी परास्त करना चाहिये । जैसा रामने वालीको छिपकर मारा था, तथा श्रीकृष्णके समक्ष भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि वीरोंका नाश पांडवोंने कपटसे ही किया था । यह माया है । वास्तवमें माया करनेवाले राक्षस ही होते हैं । पर यह विद्या देवोंने भी प्राप्त की । इसलिये कहा जाता है कि राजनीतिमें कपट नीतिके लिये स्थान है । राजनीतिका अर्थही कपटनीति है । सर्व साधारण नीति तो शुद्धनीति है, परंतु राजनीतिमें कपट पटुता आजाती है । कौटिल्यका अर्थशास्त्र देखिये । वह राजनीतिका ग्रन्थ है और उसमें कपट प्रयोगके लिये स्थान है । जिस उपायसे शत्रु मारा जा सकता है, उस उपायसे उसको मारना चाहिये । यह है राजनीतिका सिद्धान्त । यदि प्रबल शत्रुके साथ भी हम सरल व्यवहार करेंगे, तो उसकी प्रबल शक्ति हमारे लिये बाधक होगी, इसमें संदेह नहीं है ।

रावणकी मित्रता होनेसे वाली और रावण मिले थे, परस्पर संघटित थे । रावणको मारना था, इसलिये रावणको निर्बल बनानेके लिये वालीका नाश करना सरल बात नहीं थी, इस कारण अनिवार्य होनेके कारण रामने वालीका वध कपटसे किया । इसमें राजनीतिकी दृष्टीसे कोई दोष नहीं है । इसी लिये इस मंत्रमें कहा है कि (मनीषिणः मायाभिः मातृभूमिं अन्वचरन्) बुद्धिमान लोग कुशलतासे तथा कौशल्यसे भी मातृभूमिकी सेवा करते हैं । मातृभूमिकी सुरक्षा करनेके कार्यमें ही इस तरहका शब्द प्रयोग-जिसके दो विभिन्न अर्थ होते हैं-किया है । यह सावधानी ध्यानमें धरने योग्य है । सदासर्वदा, आपसके व्यवहारमें अथवा जहां सरलतासे कार्य चल सकता है वहां कपट प्रयोग शत्रुसे भी नहीं करना चाहिये । यह तो नियम है, पर जिस समय कार्य बनता नहीं, उस समय शत्रुको कौशल्यसे जीतना चाहिये । इतनी सावधानी वेदने यहां बतायी है । पाठक भी उतनी सावधानीसे इसका अर्थ समझें ।

कौरव वीरोंके साथ पाण्डव वीरोंने सरल रीतिसे ही युद्ध किया था । बहुत प्रयत्न करके भी उनको परास्त करना पाण्डवोंके लिये शक्य नहीं था । पाण्डवोंकी शक्ति किसी तरह अधिक बढ नहीं सकती थी, पाण्डवोंका पराभवका अर्थ सत्पक्षका पराभव था । सत्पक्षका तो पराभव होना नहीं चाहिये । इसलिये अन्तिम समयमें पाण्डवोंने कपट प्रयोग किया और श्रीकृष्णने उसका अनुमोदन भी, सत्पक्षका जय होनेके लिये ही किया था । माया का प्रयोग करनेकी यही मर्यादा है । इस मर्यादाका पालन अवश्य होना चाहिये ।

अब मातृभूमिका धारण किन गुणोंसे होता है इस विषयमें इस राष्ट्रगीतका मंत्र जो उपदेश देता है वह देखिये—

सत्यं बृहदृतं उग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्यु
रुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १२।१।१

" सत्य, बृहद्भाव, सरलता, उग्रता, दक्षका, शीतोष्ण सहन करनेकी शक्ति, ज्ञान और यज्ञ ये आठ सद्गुण मातृभूमिका धारण करते हैं । वह हमारी भूत वर्तमान और भविष्यका पालन करनेवाली मातृभूमि हमारे लिये विस्तृत कार्य क्षेत्र देवे । "

स्वराज्य प्राप्त होनेपर उसका संरक्षण कैसा होता है वह इस मन्त्रने कहा है । भारतको इस समय स्वराज्य मिला है, इस स्वराज्यकी सुरक्षा कैसी होगी, यह प्रश्न हमारे सामने इस समय है, इस संरक्षणके विषयका बोध इस मन्त्रने

दिया है। पीछे दिये कई मंत्रोंमें मातृभूमिका संरक्षण करना चाहिये ऐसा उपदेश किया है। वह मातृभूमिका संरक्षण किस रीतिसे करना चाहिये, इसका ज्ञान इस मन्त्रने दिया है। यहां आठ सद्गुणोंका निर्देश है। ये गुण मातृभूमिका धारण करते हैं (पृथिवीं धारयन्ति) ऐसा यहां कहा है। जिस राष्ट्रके लोगोंमें ये आठ गुण होंगे, वे लोग अपनी मातृभूमिका संरक्षण कर सकते हैं। इसलिये संक्षेपसे हम इन आठ गुणोंमें क्या कहा है वह बताते हैं—

१ सत्य— पहिला राष्ट्ररक्षक शुभ गुण सत्य है। राष्ट्रके मनुष्योंमें विचार, उच्चार, आचारमें सत्य रहना चाहिये। सत्यसे व्यवहार उत्तम होता है और राष्ट्रका रक्षण होता है।

२ बृहत्— बृहद्भाव मानवोंमें रहना चाहिये, एक विशालभाव होता है और दूसरा संकुचित भाव होता है। उदारताका विशाल भाव मनुष्योंमें होना चाहिये। संपूर्ण मानव समाजके कल्याण करनेका यत्न करना, यह विशाल भाव है। ' वसुधैव कुटुंबकं ' यह विशाल भाव है। राष्ट्र रक्षणके लिये इसकी आवश्यकता है। इसके विरुद्ध संकुचित भाव यह है कि अपनी जातीका रक्षण करनेके लिये अन्य जातीयोंका नाश करना। अपने कुटुंबका रक्षण करने के लिये अन्य कुटुंबोंका नाश करना। यह संकुचित भाव मातृभूमिका नाश करता है। विशाल उदारताका भाव राष्ट्रकी सुरक्षा करता है।

३ ऋतं— सरलता, सीधापण, तेढेपन का अभाव, निष्कपट आचरण रहना चाहिये। इससे व्यवहार उत्तम होते हैं और मातृभूमिका यश बढता है। राष्ट्रका संरक्षण होता है।

४ उग्रं— उग्रता, वीरता, शौर्य, धैर्य, युद्ध सामर्थ्य। क्षत्रिय का यह गुण है। राष्ट्रका रक्षण करने में इसका विशेष महत्त्व है।

५ दीक्षा— दक्षता, सावधानता, किसी समय असावधान न रहना। सब कार्य दक्षतासे निर्दोष करना। शिथिलतासे कोई कार्य योग्य रीतिसे नहीं होते। इस लिये सदा दक्ष रहनेका उपदेश यहां किया है।

६ तपः— शीत उष्ण सहन करना, हानिलाभ आदि द्वन्द्वोंको सहना और उत्साहसे अपना कार्य करना चाहिये। जो लोग शीत लगने पर ज्वरित होंगे तथा उष्णता लगने पर जिनका सिर चक्कर खाने लगेगा वे राष्ट्रका संरक्षण किस तरह कर सकेंगे ? शीत लगे, उष्णता हो अथवा वृष्टी होती रहे, जिनके शरीर इन तीनों ऋतुओंमें सुदृढ रहेंगे, वेही राष्ट्रका रक्षण कर सकते हैं। मनुष्य शीत उष्ण सहन करनेवाले बनें, यह आदेश यहां दिया है, वह अत्यंत योग्य है।

७ ब्रह्म— ज्ञान और विज्ञान इसकी मानवोंकी प्रगतिके लिये अत्यंत आवश्यकता है। ज्ञान विज्ञानके विना मानव अन्धा है। विज्ञानसे भौतिक सुख साधन बढाये जा सकते हैं, और आत्मज्ञानसे मानसिक शान्तिका लाभ होता है। अतः मानवोंको उचित है कि वे ज्ञान और विज्ञानमें अपनी अधिक उन्नति संपादन करें और ऐसा करें कि राष्ट्रमें ज्ञान और विज्ञान सम प्रमाणमें परस्पर सहायक होकर रहें। यदि राष्ट्रमें विज्ञान बढेगा और आत्मज्ञान कम होगा, तो उस राष्ट्रमें नास्तिकता बढेगी। भौतिक सुख बढेंगे, पर आत्मिक अशान्ति ही बढेगी। इसी तरह यदि किसी राष्ट्रमें आत्मज्ञान ही बढेगा और विज्ञानकी ओर कोई ध्यान नहीं देंगे, तो उस राष्ट्रमें भौतिक सुख तो रहेंगे ही नहीं; पर निष्क्रियता ही बढती रहेगी। इस लिये ज्ञान और विज्ञान इन दोनोंका समविकास राष्ट्रमें होना चाहिये। इसीको ब्रह्मज्ञान कहते हैं। प्रकृति, जीव और परमात्मा (त्रयं यदा विन्दते ब्रह्म एतत्। श्वे. उ.) ये तीनोंका जो साकल्येन ज्ञान है वही ब्रह्मज्ञान है। तात्पर्य यह है कि यह सब ज्ञान राष्ट्रमें रहना चाहिये।

आज भारतमें थोडासा आत्मज्ञान है पर यहां निष्क्रियता है, युरोपमें विज्ञान है पर वहां नास्तिकता है। ये दोनों अवस्थाएं अयोग्य अतः हानिकारक हैं। इसलिये राष्ट्रकी उन्नतिके लिये दोनों ज्ञान विज्ञान राष्ट्रमें बढने चाहिये।

८ यज्ञ— श्रेष्ठ सज्जनोंका सत्कार करना, आपसकी संघटना करना और दोनोंका उद्धार करना ये तीन कार्य यज्ञके हैं। सज्जनोंका सत्कार करनेसे समाजमें तथा राष्ट्र में श्रेष्ठोंकी प्रतिष्ठा बढती है, संघटनासे राष्ट्रका बल बढता है और दीनोंका उद्धार होनेसे दीनता दूर होती है, राष्ट्र समर्थ बनता है। दीनता चार प्रकारकी है और उसको दूर करना भी चार प्रकारसे ही होता है। ज्ञान हीनताके कारण

होनेवाली दीनता ज्ञानके प्रसारसे दूर होती है, निर्बलताके कारण होनेवाली दीनता बल बढानेसे तथा शौर्य वीर्य, धैर्य बढानेसे दूर होती है, धनहीनताके कारण होनेवाली दीनता राष्ट्रमें कार्यव्यवहार बढानेसे धन प्राप्त होनेसे दूर होती है। और कर्म शक्तिके अभावसे उत्पन्न होनेवाली दीनता कर्म कौशल तथा कर्म प्राविण्य बढानेसे दूर होती है। इस चार ही प्रकारकी दीनताको दूर करनेके ये चार उपाय हैं। इसका नाम यज्ञ है, गीतामें द्रव्य यज्ञ, तपो यज्ञ, स्वाध्याय-ज्ञान यज्ञ, योग यज्ञ आदि अनेक यज्ञ कहे हैं, वे सब इन सब दीनताओं को दूर करनेके लिये ही हैं। यज्ञसे ही यह सब होता है और राष्ट्र बलवान बनता है। यज्ञ अनेक प्रकारके हैं और वे सबके सब इस तरह राष्ट्रको बलवान बनानेके लिये ही हैं।

इस तरह वे आठ शुभगुण राष्ट्रका धारण करते हैं (धारयन्ति) अर्थात् ये उत्तम श्रेष्ठ गुण राष्ट्रको पराभूत होने नहीं देते। इस लिये इन गुणोंको राष्ट्रमें बढाना चाहिये।

राष्ट्रके शिक्षा मंत्रीके द्वारा राष्ट्रमें ज्ञान विज्ञानका प्रसार हो सकता है, सत्य ऋत और दक्षता का भाव भी सुरक्षासे ही बढ सकता है। संरक्षणके मंत्रीके प्रबंधसे राष्ट्रमें उग्रता, शीतोष्ण सहन करनेका सामर्थ्य आदि बढाया जासकता है और जनता का शौर्य वीर्य प्रभावी किया जा सकता है। इस तरह राष्ट्रके शासनकर्ताओंके सुयोग्य प्रबंधसे ये सभी आठ गुण राष्ट्रमें बढाये जा सकते हैं और राष्ट्र अपने सामर्थ्यसे अपना संरक्षण करनेमें समर्थ हो सकता है। यह सब प्रबंध करनेका भार इस मंत्रके पूर्व अर्धने लोगोंपर रखा है। इस दृष्टीसे यह मंत्र बहुमूल्य उपदेश दे रहा है।

हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ है, पर हमारे अन्दर ये आठ गुण जितने बढने चाहिये उतने बढाये नहीं हैं। इसलिये हमारे राष्ट्रके संरक्षणका कार्य जिस तरह होना चाहिये, उस तरह नहीं हो रहा है। यहां पाठक इस मंत्रके कहनेकी सत्यताका अनुभव ले सकते हैं। राष्ट्रगीतके पहिले ही मंत्रमें वेदने इतना उपयोगी उपदेश दिया है। यही इस राष्ट्रगीत की श्रेष्ठता है।

इस मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि " हमारी मातृभूमि हमारे लिये विस्तृत कार्य क्षेत्र करके देवे। " अर्थात् हमारे लिये हमारे राष्ट्रमें विस्तृत कार्यक्षेत्र मिले। मातृभूमिके सुपुत्रोंको अपने राष्ट्रमें विस्तृत कार्यक्षेत्र मिलना चाहिये। ऐसा कभी नहीं होना चाहिये कि राष्ट्रके सुपुत्रोंको अपने राष्ट्रमें कार्यक्षेत्र न मिले और दूसरे देशोंके निवासियोंको हमारे देशमें विशाल कार्यक्षेत्र मिलता रहे। यह विशाल कार्यक्षेत्रकी प्राप्ति तो सुयोग्य शासन प्रबंधसे ही हो सकती है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः अ. १२।१।१२

' हमारी माता भूमि है और मैं उस माताका पुत्र हूं ' मातृभूमिके विषयमें मातृप्रेम जनतामें रहना चाहिये यह इस मंत्रमें कहा है। इस तरह मातृभूमिके विषयमें प्रेम रहेगा तोही वे लोग अपनी मातृभूमिका रक्षण करनेके लिये तैयार रहेंगे।

शत्रुका नाश

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्यात्
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥
अ. १२।१।१४

" हे मातृभूमे! हे अपूर्व कार्य की स्फूर्ति देनेवाली भूमि। जो हमारा द्वेष करता है, जो हमारे ऊपर सैन्य भेजता है, जो मनसे हमें दास करनेका उद्योग करता है और जो हमारा वध करता है, उसका पूर्णतया नाश हो।"

यहां शत्रुके कई प्रकारके भेद वर्णन किये हैं। द्वेष करना, सैन्य भेजकर उपद्रव देना, दास करनेकी योजना करना और वध करना ये हैं शत्रुके लक्षण। जो इस तरह के शत्रु हों उनका पूर्ण नाश होना चाहिये।

मातृभूमिकी सेवा

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्। शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा॥ अ. १२।१।१७

" हमारी मातृभूमि उत्तम औषधियोंको निर्माण करती है। इस भूमिको हम धर्मसे धारण करते हैं। इस शुभ तथा सुखदायी मातृभूमिकी हम सर्वदा सेवा करेंगे।" इस मंत्रमें मातृभूमिकी सेवा करनेका व्रत राष्ट्रमें रहनेवाले सब लोकोंको अपने आचरणमें रखना चाहिये यह उपदेश है।

*

मातृभूमिकी वंदना

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ।
अ. १२।१।२६

" जिस भूमिके अन्दर सुवर्ण आदि प्रशस्त धातु रहते हैं, उस मातृभूमिको मैं वन्दन करता हूं। "

यहां मातृभूमि वन्दन करने योग्य है ऐसा कहा है। " वन्दे मातरं " कहनेके समानही ' पृथिव्या अकरं नमः ' यह मन्त्र भाग है । मातृभूमिकी वन्दना करनी चाहिये यह भाव यहां है ।

युद्धके ढोल

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति यस्यां मर्त्या व्यैलवाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान् असपत्नं
मा पृथिवी कृणोतु ॥ १२।१।४१

" जिस भूमिमें लोग आनन्दसे नाचते और खेलते हैं, जिसमें वीर शत्रुके साथ युद्ध करते हैं, उस युद्धके समय जिसमें युद्धके ढोल बजते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओंको दूर भगा देवे और हमें शत्रुरहित करे ॥ "

राष्ट्रमें लोग आनन्दके समय प्रसन्नतासे नाचें, खेलें और आनन्द करें । पर युद्धका समय आनेपर युद्ध करके शत्रुको भगानेके लिये भी तैयार रहें। और अपना राष्ट्र शत्रुरहित बना देवें । यह है ध्येय । शत्रु न रहे ऐसा करना चाहिये । ऐसा करने पर भी यदि दुष्ट लोग शत्रुता करने लगें, तो उनका पूर्ण नाश करना चाहिये ।

मैं विजयी होऊंगा

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।
अ. १२।१।५४

" मैं विजयी होकर अपनी मातृभूमिमें अधिक श्रेष्ठ बनकर रहूंगा । मैं सब शत्रुओंका पराभव करूंगा और दिशा उपदिशाओंमें विजयी बनूंगा ।" इस तरह विजयकी इच्छा हरएकको अपने मनमें धारण करनी चाहिये । तथा-

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥
अ. १२।१।५६

" जो ग्राम वा नगर हैं, जो अरण्य हैं और जो हमारी मातृभूमिमें सभाएं, समितियाँ और जो संग्राम होते हैं, उन सबमें मातृभूमिके विषयमें उत्तमही भाषण करूंगा ।" कदापि अपनी मातृभूमिके विषयमें मैं हानिकारक भाषण नहीं करूंगा। यह उपदेश हरएकको ध्यानमें धरने योग्य है।

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः ॥
अ. १२।१।५८

" मातृभूमिके विषयमें मैं जो बोलूंगा वह मीठाही होगा। जो देखूंगा वह मातृभूमिके रक्षणके लिये ही होगा । मैं तेजस्वी, वेगवान्, बलवान् होकर शत्रुओंका नाश करूंगा।"

आत्मबलिका अर्पण

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥
अ. १२।१।५२

" हे मातृभूमे ! तुम्हारेसे उत्पन्न हुए हम सब लोग रोगरहित तथा क्षयादि दोषरहित होकर तुम्हारी सेवा करनेके लिये तुम्हारे समीप रहेंगे । तुमसे उत्पन्न हुए भोग हमें प्राप्त हों, हम ज्ञानी बनें, दीर्घायु बनें, और तुम्हारे यशको बढानेके लिये अपने सर्वस्व का बलि अर्पण करनेके लिये सिद्ध हों । "

हम नीरोग, दोषरहित, क्षयादि व्याधियोंसे दूर हों, हम बलवान बनें, ज्ञानी बनें तथा सुदृढ होकर दीर्घायु बनें और मातृभूमिका यश बढानेके लिये (बलिहृतः स्याम) बली अर्पण करनेवाले बनें ।

इस वैदिक राष्ट्रगीतमें और भी बोधप्रद मंत्र कैसे उत्तम हैं उनको अब देखिये—

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्
सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ४ ॥ अ. १२।१।४

' जिस मातृभूमिमें चारों दिशाओंमें अनेक खेत हैं,जिनमें किसान आपसमें मिलकर उत्तम अन्न उत्पन्न करते हैं । जो

सब प्राणियों और घूमनेवालोंको उत्तम प्रकार धारण करती है, वह मातृभूमि हमें गौओंमें तथा अनेक प्रकारके अन्नोंमें रखे। '

अर्थात् हमें पर्याप्त गौ आदि पशु मिलें और अनेक प्रकारके अन्न प्राप्त हों। कृषीवल इस हमारी मातृभूमिपर उत्तम अन्न उत्पन्न करते हैं, जिस कारण अपने देशमें उत्पन्न हुआ अन्न हमें पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त होता है, ऐसा यह देश हमारा प्रिय देश है। तथा और देखिये—

यस्यामापः परिचराः समानीः
अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहां
अथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥ अ० १२।१।९

' जिस हमारी मातृभूमिमें दिनरात जलप्रवाह चलते रहते हैं, वह भूमि हमें भरपूर दूध देवे और तेजोमय बलके साथ हमारा सामर्थ्य बढावे ' इसमें श्लेष अलंकार है। (परिचराः) परिचर पद परिभ्रमण करके सेवा करनेवाले स्वयं सेवकोंका भाव बताता है। जिस मातृभूमिमें प्रमाद न करते हुए रातदिन जलके प्रवाह चलते रहनेके समान, स्वयं सेवक जनताकी सेवा करनेके लिये सतत घूमते रहते हैं, वह भूमि हमें दूध घी आदि पदार्थ देवे और हमारा तेज भी बढावे। (आपः समानीः) जलप्रवाह समानता स्थापन करते हैं। जल जब प्रवाहित होता है, तब वह प्रथम गढोंमें भरता है, भरकर उनको (समा-नीः) समान करके फिर आगे बढता है। इस तरह राष्ट्रके (परिचराः) परिचारक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक राष्ट्रमें सर्वत्र समानता निर्माण करते हैं, जहां न्यूनता होती है वहां भरपूर पूर्णता करते हैं और रातदिन प्रमाद न करते हुए जनतामें शान्ति स्थापनका कार्य करते रहते हैं, सदा तत्पर होकर सेवा करते हैं। ऐसी राष्ट्रसेवा करनी चाहिये यह उपदेश यहां किया गया है।

अध्यक्षका निर्वाचन

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते
पृथिवी स्योनमस्तु । बभ्रुं कृष्णां
रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं
पृथिवीमिन्द्र गुप्ताम् । अजीतोऽहतो
अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥ अ० १२।१।११

' हे मातृभूमि ! तुम्हारे पहाड और पर्वत, हिमाच्छादित शिखर, अरण्य और वन हमारा सुख बढावें। भूरी, काली, उपजाऊ, अनेक रंगवाली विस्तृत और स्थिर मातृभूमि हमारे प्रतापी वीरों द्वारा सुरक्षित हुई है। इस भूमिपर अपराजित, अहत और क्षतरहित होकर मैं अध्यक्ष होऊंगा। '

मैं पराजित न होकर इस मातृभूमिका मैं अध्यक्ष होऊंगा यह आकांक्षा मनमें हरएक उत्साही कार्यकर्ता धारण कर सकता है। यहां मातृभूमि हमारा (स्योनं) कल्याण करे, मातृभूमिके उपरके पर्वत, नदियां आदि हमारी सहायता करें अर्थात् शत्रुसे हमारी सुरक्षा करें ऐसा प्रथम कहा है। दूसरे चरणमें वीरों द्वारा (इन्द्रगुप्तां भूमिं) सुरक्षित हुई हमारी मातृभूमि है ऐसा कहा है। इससे संरक्षणका भार वीरोंपर है यह स्पष्ट होता है। तीसरे चरणमें मैं अजिंक्य होकर मातृभूमिका अध्यक्ष बनूंगा यह महत्त्वाकांक्षा प्रत्येक उत्साही विद्वान वीर धारण करे ऐसा सूचित किया है। राष्ट्रका अध्यक्ष प्रजा द्वारा चुना हुआ हो यह बात यहां स्पष्ट हुई है और वह अजिंक्य, अक्षत और अमर जैसा नित्य उत्साही हो ऐसा भी यहां सूचित हुआ है।

धर्मसे मातृभूमिका धारण

विश्वस्वं मातरमोषधीनां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा ॥ १७ ॥
अ० १२।१।१७

' हमारा सर्वस्व ऐसी यह हमारी मातृभूमि हमारे लिये है। यह अनेक औषधियोंका निर्माण करती है। यह राष्ट्र रक्षणके धर्मसे धारण की हुई तथा सुरक्षित रखी हुई विस्तृत ऐसी हमारी मातृभूमि है। सर्वदा इस कल्याणकारी सुखदायी मातृभूमिकी हम सब सेवा करेंगे। '

जो जिस देशके रहनेवाले हैं, वह देश उस देशवासियोंके लिये सचमुच (विश्वस्वं) सर्वस्व है। उनके धर्मयुक्त प्रयत्नोंसे उनको अपने देशका संरक्षण करना चाहिये (धर्मणा-धृतां भूमिं) अपनी मातृभूमि अपने लिये (शिवां स्योनां) शुभ और कल्याणकारिणी तथा सुखदायिनी है ऐसा आदर का भाव अपने मनमें रखना चाहिये। तथा (विश्वहा अनुचरेम) सर्वदा हम सब अपनी मातृभूमिकी

सेवा करेंगे ऐसा निश्चय करके वैसी ही सेवा करते रहना चाहिये। शत्रु दूर करनेकीही सेवा करनी चाहिये ऐसा नहीं है, प्रत्युत ज्ञानी अपने ज्ञानके दानसे, शूरवीर शत्रुको दूर करनेसे, धनी अपने धनसे, कृषक अपने अन्नोत्पादनसे, व्यापारी अपने उत्तम व्यापारसे और शिल्पी अपने शिल्पों से मातृभूमिकी सेवा कर सकते हैं और मातृभूमिको सुखी कर सकते हैं।

भरपूर अन्न मिले

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु
जरदाष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥ २२ ॥

अ. १२।१।२२

"अपनी मातृभूमिमें मनुष्य यज्ञ करके देवोंको हवि अर्पण करते हैं, इस भूमिमें मनुष्य उत्तम खानपानसे जीवित रहते हैं। वह हमारी मातृभूमि दीर्घजीवन और शरीरका बल हमें देवे और वृद्धावस्थातक जीवित रहनेवाले हमें बनावे।"

हम वृद्ध अवस्था तक रहें, तब तक हमारी शक्ति स्थिर रहे, तबतक हम मातृभूमिकी सेवा करते रहें। हमें खान-पानके लिये योग्य पदार्थ पर्याप्त प्रमाणमें मिलते रहें। हम अपने पासके अन्नादि पदार्थ देवोंको यज्ञ करके अर्पण करें और देव हमारे लिये पर्जन्य आदि देकर अन्नकी वृद्धि करते रहें। इस तरह परस्परकी सहायतासे परस्परका लाभ होता रहे। यज्ञमें विद्वानोंका सत्कार होता रहे, समानोंकी संघटना बढती जाय और दीनोंकी दीनता दूर होती रहे। इस तरह यहां सबका कल्याण होकर सब आनन्द प्रसन्न होते रहें।

किसीको दुःख न हो

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महिभ्याम् २८

अ. १२।१।२८

'हम सब चलते फिरते हुए, बैठे हुए, खडे हुए अथवा दौडते हुए दाहिने और बांये पांवोंसे अपनी मातृभूमिमें किसीको दुःख न दें।' अर्थात् हमारा चाल चलन किसी को दुःख देनेवाला न हो। इतनाही नहीं; परंतु हमारा व्यवहार सबका सुख बढानेवाला ही होता रहे। तथा—

विमृग्वरीं पृथिवीमावदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्। ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्न-भागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

अ. १२।१।२९

'विशेष शुद्ध और ज्ञानसे जिसका धारण किया जाता है, तथा जो बलवर्धक और पुष्टिकारक अन्न तथा घृत आदि-का धारण करती है, उस मातृभूमिकी हम सब प्रार्थना करते हैं कि 'हे मातृभूमे! हम तुम्हारे आश्रय लेकर आनन्दसे यहां रहेंगे।'

इस तरह सब लोग जानें कि हमारा आश्रय यह मातृ-भूमिही है, यही हमें अन्नपान देती है, रहनेके लिये स्थान देती है, सब प्रकारसे धारण पोषण करती है और हमारा आनन्द बढाती है, इसलिये हमें इस मातृभूमिकी सेवा करनी चाहिये।

हमारा पतन न हो

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्। स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु, मा नि पप्त भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

अ. १२।१।३१

"हे मातृभूमे! जो तुम्हारी पूर्वदिशा, जो उत्तरदिशा और जो अन्य दिशाएं तथा उपदिशाएं हैं तथा जो नीचेके तथा पीछेके भाग हैं, वे सब मेरे व्यवहार करनेके समय मुझे सुखदायी हों। अपने देशमें आश्रय लेनेपर मुझे कोई न गिरावे।"

अपने देशमें किसी तरह (मा नि पप्त) मेरी गिरावट न हो। मैं सदा उन्नत होता रहूं।

शत्रुका वध

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत। स्वस्ति भूमे नो भव, मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

अ. १२।१।३२

'हे मातृभूमे! पीछेसे मेरा नाश न हो, आगेसे, ऊपरसे अथवा नीचेसे मेरा नाश न हो। हे मातृभूमे! हमारा कल्याण हो। शत्रुको हमारा पता न लगे। सब हमारे वध करनेवाले शस्त्र हमसे दूर जाकर शत्रुपर गिरें।' अर्थात् हम सुरक्षित हों और शत्रुही नष्टभ्रष्ट हो जांय।

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मेचक्षुर्मा मेष्ठोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३२ ॥

अ. १२।१।३३

"हे मातृभूमे ! अपने आनन्ददायक प्रकाशसे युक्त सूर्यकी सहायतासे जहांतक तुम्हारे विस्तारको मैं देख सकूंगा, तब तक मेरी आंख कार्य करती रहे और मैं उत्तर उत्तर आयुको प्राप्त होता रहूं ।"

मेरी आयु बढे और मैं मातृभूमिकी सेवा करता रहूंगा। मेरी शक्ति क्षीण न हो यह इच्छा यहां प्रकट हुई है ।

हमें पर्याप्त धन मिले

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्रो एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

अ० १२।१।४०

' जितने धनकी हम कामना करते हैं, वह सब धन हमें हमारी मातृभूमि देवे । शत्रुहन्ता वीर आगे बढे और धन-देव उसका सहायक हो । ' मातृभूमि हमें पर्याप्त धन देवे । हमारे कार्योंके लिये धन कभी न्यून न हो । शत्रुका नाश करनेवाला (इन्द्र) वीर आगे शत्रुका नाश करनेके लिये बढे और (भगः) धनवान् उसकी सहायता करे । इस तरह वीर और धनी मिलकर अपनी मातृभूमिकी सुरक्षा करते रहें ।

मातृभूमिकी वन्दना

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

अ० १२।१।४२

' जिस हमारी मातृभूमिमें चावल और जौ होते हैं और जिसमें ज्ञानी शूर व्यापारी शिल्पी और वन्य ये पांचों लोग आनंदसे रहते हैं, उस वर्षासे आनंदित होनेवाली और पर्जन्यसे पालित होनेवाली हमारी मातृभूमिके लिये हम वन्दन करते हैं । '

विजय करेंगे

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

अ० १२।१।४७

' हे मातृभूमे ! जो तेरे ऊपरसे जाने आनेके मार्ग हैं, जिनपरसे मित्र और शत्रु भी संचार करते हैं, तथा जो रथके तथा गाडीके मार्ग हैं । वे सब मार्ग चोररहित और शत्रुरहित हों । जो कल्याणकारी है वही हमारे पास आकर हमें सुख देवे । '

यहां रथके मार्ग और मनुष्योंके चलनेके मार्ग पृथक् हैं ऐसा वर्णन है । (जनायनाः) मनुष्योंके जानेके मार्ग (रथस्य अनसश्च वर्त्मानः) रथके और गाडीके मार्ग ऐसे दो प्रकारके मार्ग हैं। ये सब मार्ग निर्भय और सुखकारी हों।

शत्रु दूर हों

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥५०॥

अ० १२।१।५०

' जो हिंसक, कर्मका त्याग करनेवाले, जो कृपण, जो दूसरेका धन खानेवाले, रुधिर पीनेवाले और जो राक्षस हैं उन सबको हे भूमे ! यहांसे दूर करो । '

(गन्धर्व) गन्धन अर्थात् हिंसाशील, (अप्-सरसः) कर्मसे दूर जानेवाले, कर्तव्य पराङ्मुख, (अ-रायाः) दान न देनेवाले, कृपण कंजूस, (किं-ईदिनः) अब क्या खाऊं ऐसा सतत विचार करनेवाले, (पिशाचाः पिशित-अशनाः) रक्त पीनेवाले और सब प्रकारके राक्षस दुष्ट जो होंगे, उन सबको दूर करना चाहिये । राष्ट्रसे इन सब दुष्टोंको बाहर करके जनताको सुखी करना चाहिये ।

ईश्वरकी सहायता

त्वमस्यावपनी जनानां
अदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आपूरयाति
प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ६१ ॥

अथर्व १२।१।६१

' हे मातृभूमे ! तू लोगोंको अन्न देनेवाली कामधेनु जैसी प्रशंसाके योग्य हो । तुम स्वयं बडी उपजाऊ हो । जो तेरे अन्दर न्यून होगा उस न्यूनताको सत्ययज्ञका पहिला प्रवर्तक प्रजापालक परमेश्वर परिपूर्ण करेगा ।' ऐसा विश्वास ईश्वरपर लोगोंका होना चाहिये । तो सच्चे भक्तोंकी सहायता परमेश्वर

करता है। और वैसे ईश्वरभक्तोंमें यदि कोई न्यूनता होगी, तो उसकी पूर्णता भी वह करता है। प्रयत्नशील सदाचारी लोगोंका यश सदा बढता ही रहता है।

भरपूर खानपान मिले

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ अ. १२।१।३

'(यस्यां समुद्रः) जिस भूमिके साथ समुद्र है, महासागर है, (सिन्धुः आपः) जिस भूमिमें नदियां और जलके झरने हैं, (यस्यां अन्नं) जिस भूमिमें अनेक प्रकारका अन्न उत्पन्न होता है, और जिसमें (कृष्टयः संबभूवुः) कृषी करनेवाली प्रजा मिलकर रहती है, (यस्यां इदं प्राणत् एजत्) तथा जिस भूमिमें यह प्राणी जगत् घूमता और फिरता है, (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (नः पूर्वपेये दधातु) हमें अपूर्व परिपूर्ण खाद्यपेयोंमें धारण करे अर्थात् हमें उत्कृष्ट खानपान भरपूर देती रहे।

हमारी मातृभूमिके साथ समुद्र लगा है, जहांके जलमार्गसे हम देशदेशान्तरमें जा सकते हैं, जिस मातृभूमिमें नदियां और झरने बहुत हैं, अतः जिसमें भरपूर अन्न और रसपान मिलता है। जिसमें रहनेवाले प्रजाजन आपसमें संघटित होकर कार्य करते हैं। वह हमारी मातृभूमि हमें भरपूर खानपान देवे। पूर्ण पेय हमें मिले, नाना प्रकारके अन्नरस हमें मिलते रहें, किसी तरहकी न्यूनता यहां न रहे।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

(यस्याः पृथिव्याः) जिस हमारी मातृभूमिके (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओंमें (कृष्टयः) कृषी करनेवाले लोग (यस्यां अन्नं संबभूवुः) जिसमें मिलकर अन्न उत्पन्न करते हैं (या) जो मातृभूमि (प्राणत् एजत् बहुधा बिभर्ति) प्राणियोंको और हिलनेवाले प्राणिसमूहोंको अनेक प्रकारसे धारण करती है, (सा नः भूमिः) वह हमारी मातृभूमि (गोषु अन्ने अपि नः दधातु) गौओंमें और अन्नमें हमें धारण करे। हमें पर्याप्त प्रमाणमें गौवोंसे दूध और अन्न देवे।

इसमें भी पर्याप्त संख्यामें गौवें दूध पीनेके लिये हमें मिलें, रसदार फल मिलें, अनेक प्रकारके अन्न मिलें इस तरह सब प्रकारका भरपूर खानपान मिले, किसी तरह खानपानकी न्यूनताके क्लेश न हों ऐसा कहा है। हरएक मातृभूमिका भक्त इसी तरह इच्छा करेगा।

वृक्षोंका संरक्षण

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा। पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ॥ अ. १२।१।२७

(यस्यां वानस्पत्याः वृक्षाः) जिस हमारी मातृभूमिमें वनस्पतियां और वृक्ष (विश्वहा ध्रुवाः तिष्ठन्ति) सर्वदा स्थिर रहते हैं, अर्थात् जिस भूमिपर हरीभरी वृक्ष वनस्पतियाँ बहुत हैं, उस (विश्वधायसं पृथिवीं धृतां) सबको धारण करनेवाली हमारी मातृभूमिको हम सुसंरक्षित रखते हैं और (अच्छ अवदामसि) मुख्यतया उसका ही हम गुणवर्णन करते हैं।

मातृभूमिमें वृक्षों और वनस्पतियोंका उत्तम संरक्षण करना वहांके निवासियोंका कर्तव्य है क्योंकि वृक्ष वनस्पतियाँ न रहीं, तो वृष्टि कम गिरेगी और जल कम होनेसे अन्नकी उपज कम होगी। इस कष्टदायक अवस्थाको दूर करनेके लिये यह आवश्यक है कि, मातृभूमिमें वृक्षवनस्पतियोंकी अच्छी समृद्धि रहे। प्रजाजन अपनी मातृभूमिका उत्तम संरक्षण करें और अपनी मातृभूमिकी जिन गुणोंमें प्रशंसा करनी योग्य हो उन गुणोंकी प्रशंसा करें।

शरीरकी शुद्धता

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः। पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि ॥

अ. १२।१।३०

हे पृथिवि! (नः तन्वे) हमारे शरीरकी शुद्धिके लिये (शुद्धाः आपः क्षरन्तु) शुद्ध जल भरपूर बहा करे। (यः नः अप्रिये) जो हमारे लिये अप्रिय है उसको हम (सेदुः) मलके समान दूर फेंकते हैं। (पवित्रेण मा उत्पुनामि) जो पवित्र है उससे मैं अपने आपको पवित्र करता हूं।

मनुष्य जलसे अपने शरीर शुद्ध करें, इस कार्यके लिये जितना चाहिये उतना जल मिलता रहे। मातृभूमिपर

जलकी न्यूनताकी कभी बाधा न हो। अपने शरीरमें जो मल हैं उनको दूर करके अपना जीवन शुद्ध करना चाहिये। मलोंसे नाना क्लेश उत्पन्न होते हैं। इस कारण शरीर, मन, बुद्धिकी पवित्रता करना अत्यंत आवश्यक है। जलसे शरीरकी शुद्धता, विचारोंसे तथा सत्यसे मनकी शुद्धता, विद्या और शुभ भावनासे बुद्धिकी पवित्रता और तपसे सबकी शुद्धता होती है। 'मातृभूमि' ऐसी प्रेरणा सब प्रजाजनोंमें करें कि जिससे सब लोग शुद्ध पवित्र और यज्ञीय बनें।

ऋतुकालसे समृद्धि

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः। ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्॥ अ. १२।१।३६

हे मातृभूमे! तेरे ऊपर आनेवाले वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त और शिशिर ये (ऋतवः) छः ऋतु जो (ते विहिताः) तेरे ऊपर नियत समयमें आते हैं और जो (हायनीः) वर्षभरमें क्रमपूर्वक आते हैं, तथा जो तेरे ऊपर दिन और रात्री आते हैं वे सब (नः दुहातां) हमारे लिये सुख देते रहें।

वसंतऋतुमें वृक्षोंको नवपल्लव तथा फल फूल आते हैं, ग्रीष्ममें भी रसदार फल होते हैं, वृष्टीमें भरपूर जलकी वर्षा होती है। शरत् और हेमंतमें धान्य प्राप्त होता है, शिशिरमें सर्दी आती है। ये सब ऋतु हम सबके लिये भरपूर अन्नरस देकर हमारा सुख बढा देवें। दिन और रात्री ये भी कर्म और विश्रामके लिये मातृभूमिपर क्रमपूर्वक आते हैं। ये सब कालविभाग मातृभूमिपर वसनेवालोंका सुख बढावें और किसी तरह भी ये हमें दुःखसे न सतावें।

यज्ञचक्रसे अभ्युदय

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते। ब्रह्माणो यस्यामर्चन्ति ऋग्भिः साम्ना यजुर्विदः। युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे॥ अ. १२।१।३८

(यस्यां सदः हविर्धाने) जिस मातृभूमिमें यज्ञशालाएं हैं और अन्नके स्थान हैं, (यस्यां यूपः निमीयते) जिस भूमिमें यज्ञके स्तम्भ खडे किये जाते हैं, (यस्यां यजुर्विदः ऋत्विजः) जिसमें यजुर्वेद जाननेवाले ऋत्विज, (ब्रह्माणः) और ब्राह्मण लोग (ऋग्भिः साम्ना अर्चन्ति) ऋचाओं और सामोंके द्वारा प्रभुकी अर्चना करते हैं। (यस्यां) जिस भूमिमें (इन्द्राय पातवे) इन्द्रको पीनेके लिये (ऋत्विजः सोमं युज्यन्ते) ऋत्विज लोक सोमका प्रयोग करते हैं। जहां इस तरहके यज्ञ चलते हैं वह हमारी पवित्र मातृभूमि है।

हमारी मातृभूमि अत्यंत पवित्र है। इसमें सर्वत्र ऋतुके अनुकूल यज्ञ होते हैं, लोग पवित्र होकर उन यज्ञोंमें जाते हैं और अपने जीवनोंको पवित्र करते हैं। जहां सर्वत्र यज्ञका पवित्र वायुमण्डल रहता है वह हमारी पवित्र अतः श्रेष्ठ मातृभूमि है। वही हमारी राष्ट्रकी उपास्य देवता है। हम इसके उपासक हैं।

धनका कोश धारण करनेवाली

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे। वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ अ. १२।१।४४

(बहुधा गुहा) बहुत तरहकी खानोंमें (वसु) धन, (मणिं) रत्न हीरा पन्ना आदि तथा (हिरण्यं) सोना चांदी आदि (निधिं बिभ्रती) संचित संपत्तिको धारण करनेवाली हमारी (पृथिवी) मातृभूमि वह संचय (मे ददातु) हमें देवे। यह (वसु-दा) धन देनेवाली, (रासमाना) दान देनेवाली (सुमनस्यमाना देवी) उत्तम मनवाली दिव्य मातृभूमि (नः वसूनि ददातु) हम सबको यथेष्ट धन देवे।

हमारी मातृभूमिमें रत्नोंकी अनेक खानें हैं, सुवर्ण आदि धातुओंकी खानें हैं। इस तरहके अनेक प्रकारके धनसंचय यह हमारी मातृभूमि हमें देती है। इस भूमिका स्वभाव ही धन देनेका है, यह धन देती है, अन्न देती है, फल फूल साग आदि देती है, नाना प्रकारके रस देती है। इनका सेवन करके हम सुखी होते हैं। ऐसी यह उत्तम प्रसन्न मनवाली हमारी मातृभूमि है। यह हमें सदा धन धान्य देती रहे और आनन्दित करती रहे।

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती। भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह॥

अ. १२।१।५९

(शन्तिवा) शान्तिदायक, (सुरभिः) सुगन्धयुक्त, (स्योना) सुख देनेवाली (कीलाल-उक्षी) अन्नरस देनेवाली, (पयस्वती) दूध आदि गोरससे युक्त (मे पृथिवी भूमिः) मेरी मातृभूमि (पयसा सह) दूधके साथ हमें (अधि ब्रवीतु) बुलावें। अर्थात् हमें उत्तम प्रकारके खाद्य-पेय देवे।

इस तरह अथर्ववेदके काण्ड १२ के प्रथम सूक्तमें जो राष्ट्रगीत है, उसके कुछ मंत्र यहां दिये हैं। ये मंत्र नाना प्रसंगोंमें बोलनेके हैं, अर्थात् युद्धका प्रसंग, आनन्दमंगलका प्रसंग, महोत्सव और कठिन समस्या शत्रुपर आक्रमण, आपसका संगठन आदि विभिन्न प्रसंगोंमें बोलनेके लिये ये मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्रका अर्थ देखनेसे वह मंत्र किस प्रसंगमें बोलने योग्य है इसका ज्ञान हो सकता है। इसके सूचक शीर्षक भी दिये हैं। अब वेदमें अन्यान्य स्थानोंमें जो राष्ट्रगीतके मंत्र हैं उनमेंसे एक दो मंत्र यहां देते हैं—

राष्ट्रमें समृद्धि हो

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतां, आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां, दोग्ध्री धेनुः वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः, पुरन्धिर्योषा, जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायतां, निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां, योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

वा० यजु. २२।२२

हे ईश्वर ! हमारे राष्ट्रमें ज्ञानसे (ब्रह्मवर्चसी) तेजस्वी बने ब्राह्मण हों, हमारे राष्ट्रमें शूर अचूक शत्रुवेध करनेवाले महारथी क्षत्रिय हों, हमारे राष्ट्रमें (दोग्ध्री धेनुः) दुधारू गौवें हों, बोझ (वोढा अनड्वान्) खींचनेवाले बैल हों, (आशुः सप्तिः) चपल घोडे हों और इन पशुओंका पालन करनेवाले उत्तम धनधान्यसंपन्न वैश्य हों, तथा उत्तम कर्ममें कुशल शूद्र हों। हमारे राष्ट्रमें (पुरंधिः योषा) स्त्रियां विशेष बुद्धिमती सुशीला और चारित्र्यसंपन्न हों, तथा नगरका (पुरं-धिः) संरक्षण करनेमें समर्थ वीर स्त्रियां हों। (जिष्णुः रथेष्ठा) विजयी रथमें बैठनेवाला (सभेयः युवा) सभामें संमान पानेवाला तरुण पुत्र यजमानके लिये हो। हमारे राष्ट्रमें ऐसे तरुण हों। हमारे राष्ट्रमें योग्य समयमें पर्जन्यकी वृष्टी होती रहे, औषधियाँ उत्तम फल फूल देती रहें और हम सबका योगक्षेम उत्तम रीतिसे हमारे राष्ट्रमें सदा चलता रहे।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नः कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

वा० यजु० १८।४८

हमारे राष्ट्रके ब्राह्मणोंमें तेज रहे, हमारे क्षत्रियोंमें तेज रहे, हमारे वैश्योंमें और शूद्रोंमें तेज रहे। हमारे राष्ट्रके ये सब लोग उत्तम तेजस्वी बनें, वीर्यवान बनें और इस तेजसे प्रत्येक मनुष्य भी तेजस्वी बने। हमारे राष्ट्रमें कोई भी निस्तेज, निर्वीर्य, निर्धन, कर्महीन दीन न हो। सब तेजस्वी, ओजस्वी, वर्चस्वी, मनस्वी बनें।

इस तरह राष्ट्रगीतके फुटकर मंत्र अन्यान्य वेदोंमें मिलते हैं।

इस राष्ट्रगीतकी विशेषता

प्रथम यह राष्ट्रगीत इतना बडा है यह देखकर लोग कहेंगे कि इतने बडे राष्ट्रगीतका पाठ किस तरह किया जा सकता है ? सब देशोंके राष्ट्रगीत, जो इस समय प्रचलित हैं वे दो मिनिटोंमें बोले जा सकते हैं। गायन करनेके लिये ३।४ मिनिट लगेंगे। पर इस राष्ट्रगीतके ६२ मंत्र केवल बोलनेके लिये आधा घण्टा लगेगा और गान करनेके लिये एक घण्टा लगेगा। इसलिये यह राष्ट्रगीत ही नहीं है।

इस विषयमें प्रथम यह कहना है कि इसका उपयोग 'ग्राम-पत्तन-राष्ट्र-रक्षणार्थ' करनेका विधान अति प्राचीन कालसे सर्व मान्य हुआ है। इस कारण उपयोग की दृष्टिसे यह राष्ट्रगीत है इसमें संदेह नहीं है। राष्ट्रीयभाव इसके प्रत्येक मंत्रमें स्पष्ट दीख रहा है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि यह बहुत लंबा है। तो इस विषयमें कहना इतना ही है कि इसके मंत्रोंके अनेक वर्ग हैं और एक एक वर्गके मंत्र एक एक प्रसंगमें बोले जानेके लिये हैं। जिस समय शत्रुपर आक्रमण करना होगा, उस समय बोलनेके मंत्र पृथक् हैं, वे ही उस समय बोलने होते हैं। यज्ञ करनेके समय, राष्ट्रीय महोत्सवके समय, शान्तिकर्मके समय, संघटना करनेके समय, एकता स्थापन करनेके समय इस तरह विभिन्न प्रसंगोंमें विभिन्न मंत्र जनसमुदायके द्वारा बोले जानेके लिये हैं। इन मंत्रोंपर जो शीर्षक है तथा

मंत्रोंका जो अर्थ दिया है, उसको देखनेसे यह बात स्पष्टतया विदित हो सकती है।

आजकलका इंग्रेजोंका राष्ट्रगीत 'गॉड सेव्ह दी किंग' अर्थात् 'प्रभु राजाकी सुरक्षा करे' यह जबतक इंग्लिशस्थानपर राजा राज्य करता है, तबतक यह गीत ठीक है, पर जिस समय वहां प्रजासत्ताक राज्य होगा, उस समय यह गीत बदलना पडेगा। इसी तरह अन्यान्य देशोंके राष्ट्रगीतोंकी स्थिति है। पर यह वैदिक राष्ट्रगीत ऐसा है कि, यह सब देशोंके सब कालोंके राष्ट्रोंके लिये सदा उपयोगी होगा। यह त्रिकालाबाधित है यह इसकी विशेषता है। पाठक इस विशेषताको मननपूर्वक देखें और इस दृष्टिसे इसका उपयोग जानें।

इस तरह यह मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत है। इतना उत्तम और बोधपूर्ण राष्ट्रगीत किसी भी दूसरे देशका नहीं है। यहां मातृभूमिकी उत्तम तथा स्पष्ट कल्पना है, राष्ट्रका रक्षण करनेके लिये लगनेवाले आवश्यक शुभगुणोंका निर्देश यहां है, मातृभूमिका यश बढानेका पूर्ण कार्यक्रम इसमें है। मातृभूमिके यशके लिये आत्मसर्वस्वका अर्पण करनेकी स्फूर्ति है। इतना बोधप्रद स्फूर्तिदायक, उत्साहवर्धक, कर्तव्य कर्म बतानेवाला राष्ट्रगीत वेदने दिया है। इससे सिद्ध हो सकता है कि वेद राष्ट्रीयताका उपदेश करता है। वेदधर्म राष्ट्रीयतासे दूर नहीं है॥

वेदमें इतना सर्वांग सुन्दर राष्ट्रगीत है यह बात सिद्ध होनेसे, वेदमें राष्ट्रशासन विषयक कई विषयोंका होना सिद्ध होसकता है। वेदमें अनेक विद्याएं हैं, उसमें राष्ट्र शासन विद्या भी है, उसका संक्षेपसे दिग्दर्शन इस राष्ट्रगीतने किया है।

इस राष्ट्रगीतको देखनेके पश्चात् राष्ट्रशासनका विचार करना अत्यंत ही आवश्यक है।

व्यक्तिमें शान्ति ! राष्ट्रमें शान्ति !! विश्वमें शान्ति हो !!!

प्र श्न

१ मातृभूमिकी स्पष्ट कल्पना जिन वेदमंत्रोंमें है, वे वेदमंत्र लिखकर उनका अर्थ लिखिये।

२ वैदिक राष्ट्रगीत किस वेदमें किस स्थानपर हैं ? और उनमें कितने मंत्र हैं ? अन्य वेदोंमें राष्ट्रगीतके मंत्र कहां और कितने हैं ?

३ प्रजाजन मातृभूमिके पुत्र हैं इस अर्थका एक मंत्र देकर उसका अर्थ लिखिये।

४ अनेकभाषी और अनेकधर्मी प्रजाजनोंका बन्धुभाव रखनेका उपदेश करनेवाला मंत्र लिखिये।

५ देवोंद्वारा बसाये नगरोंका वर्णन जहां हो वैसा मंत्र बताइये।

६ मातृभूमिका संरक्षण करना चाहिये ऐसा आदेश देनेवाले मंत्र लिखकर उनका अर्थ भी लिखिये।

७ मातृभूमिकी सेवा करनेका भाव किस मंत्रमें है ?

८ मातृभूमिका धारण जिन गुणोंसे होता है उन गुणोंका वर्णन करनेवाला मंत्र लिखकर उसका अर्थ बताइये ।

९ शत्रुनाश करनेका उपदेश करनेवाले कौनसे मंत्र हैं ?

१० मातृभूमिके लिये वंदना करनेवाले मंत्र कौनसे हैं ?

११ युद्धके ढोल किस मंत्रमें बजाये हैं ?

१२ अपने विजयकी प्रार्थना किस मंत्रमें है ?

१३ मैं अध्यक्ष बनूं यह आकांक्षा किस मंत्रमें है ?

१४ मातृभूमिके हितके लिये आत्मबलि अर्पण करनेवाला मंत्र कौनसा है ?

१५ हमारा पतन न हो ऐसी सावधानीकी सूचना करनेवाला मंत्र कौनसा है ?

१६ अपनी पवित्रता करनेका उपदेश देनेवाले मंत्र कौनसे हैं ?

१७ वृक्षोंका संरक्षण करनेका उपदेश करनेवाला मंत्र कौनसा है ?

१८ यज्ञका महत्त्व बतानेवाला मंत्र कौनसा है ?

१९ अपनी समृद्धि करनेका आदेश देनेवाले मंत्र कौनसे हैं ?

२० इस राष्ट्रगीतकी विशेषता कौनसी है ।

२१ आजकल प्रचलित विभिन्न राष्ट्रोंके राष्ट्रगीतोंके साथ इस राष्ट्रगीतकी तुलना कीजिये ।

२२ इस राष्ट्रगीतमें आपके मतसे कौनसा एक मंत्र सबसे अच्छा है उसको लिखकर उसपर एक निबंध लिखिये ।